दो मिनट और रुक जा

हिन्दी ADDA

जिंदर

दो मिनट और रुक जा

https://www.hindiadda.com/do-minute-aur-ruk-ja/

घड़ी देखकर मिस्त्री ने बाँस पकड़कर पेड़ से छलाँग लगाई। नीचे आकर आगे की ओर कोने मे किए गए पलस्तर का मुआयना किया। खुड्डे बंद किए। अपने काम से संतुष्ट होकर सीधा नलके के पास जाकर हाथ-मुँह धोने लग पड़ा। आज काम को निपटाना था। इसीलिए मिस्त्री ने आम दिनों से घंटा भर अधिक लगा दिया था। लगातार बारिश होने के कारण कमरे का एक कोना बैठ गया था। मालकिन ने कमरा बीचोंबीच तैयार करवाया था। अंदर से पलस्तर। पिछली तरफ हल्की टीप करवाई थी।

दसेक दिन का काम था, सो खत्म हो गया। सेमे को पता ही नहीं लगा कि यह दस दिन कैसे बीत गए। मिस्त्री के साथ उसकी अच्छी निभ गई थी। मिस्त्री चाय पिला देता था। बाज़ार से उसी के हाथ मँगवा कर। एक बार तो उसने चाय के पैसे देने चाहे थे, पर मिस्त्री ने बड़ा होने के कारण उसे रोक दिया था। कहा था, "तू तो हमारा दामाद भाई लगता है। मेरे लायक कोई और सेवा हो तो बता। पीनी हो तो बता दिया कर। तेरे अद्धे-पव्वे से मुझे कोई फर्क़ नहीं पड़ता।"

पैड़ खोलकर वह फट्टे नीचे रखने लगा। रस्सियों को इकट्ठा करके उसने अँगीठी पर रख दिया। ईंटों के छोटे-छोटे कंकर बिखरे पड़े थे।

"सेमे, मुझे जाना है। पहले मेरे हथियार साफ करके झोले में डालने की कर।" उसे दूसरे काम में लगा देखकर मिस्त्री ने उतावली में कहा।

"अच्छा जी," बाँस एक तरफ टिका कर वह संद साफ़ करने लगा।

"सेमे, जल्दी जल्दी हाथ चला..." मिस्त्री ने शीशे के सामने पगड़ी को ठीक करते हुए फिर आवाज़ दी।

"अच्छा जी।" वह तेजी से संदों के ऊपर जमा सीमेंट खुरचने लगा। ज़ोर-ज़ोर से चप्पटी पर कपड़ा मारने लगा।

"ला भई, बाकी मैं खुद साफ कर लूँगा।" मिस्त्री ने कहा। मिस्त्री को संदों वाला बोरा पकड़ाते हुए उसने शरारत में पूछा, "भाजी, इतनी उतावली कैसी है?"

"तूने क्या लेना है इससे?" कहकर मिस्त्री मंद मंद मुस्कराया।

जल्दी तो उसे भी थी। रोज़ अँधेरा हो जाता था। गाँव पहुँचते-पहुँचते हाथ को हाथ दिखाई नहीं देता था। पता तब चलता जब खच्च से साइकिल का अगला पहिया किसी खुरली में जा पड़ता। टोकरी में रखा डिब्बा उछल कर कहीं जा गिरता। वह अँधेरे में

इधर-उधर हाथ मारता, आँखें बंद करता, खोलता और डिब्बा उस वक्त मिलता जब किसी ट्रक या ट्रैक्टर की तेज़ रोशनी पड़ती। दुकानें खुलने से पहले ही वह काम पर आ जाता। उसका काम होता था - मिस्त्री के आने से पहले दीवार पर से कांडी से खुरच-खुरच कर मिट्टी उतारना। ईंटें भिगोना। रेता छानना। नाप कर ढेरी लगाना। मिक्सचर तैयार करना। मिस्त्री के आने तक सब कुछ तैयार रखना पड़ता था। मिस्त्री आए और आते ही काम शुरू कर दे। इस वक्त एक मिनट के लिए भी उसे फुर्सत नहीं मिलती थी। दो मज़दूरों जितना काम वह अकेले ही निपटाता। शाम तक बुरी तरह थक जाता।

आज उसे बाकी दिनों की मज़दूरी मिलनी थी। मालकिन ने पचास-पचास करके दो बार पैसे दिए थे। बाकी पैसे रख लिए थे। कहा था, "एक ही बार ले लेना। इकट्ठे पैसों की बरकत होती है। बड़ी रकम बड़ी होती है।" वह कहना तो यह चाहता था कि दस दिनों में उसके पास कहाँ कितनी रोकड़ हो जानी थी। पर आधे मन से उसने मालकिन का कहा मान लिया था। आज उसे पाँच सौ रुपया मिलना था। उसने गुड़ खरीदना था। चायपत्ती लेनी थी। इस सबसे ज़रूरी छोटे के लिए बूट खरीदने थे। छोटे से उसने कल रात वायदा किया था कि वह उसे कल कपड़ेवाले बूट लाकर देगा। छोटा चप्पलें पहनकर स्कूल जाता था। ठंड लगने से दो बार बीमार हो चुका था।

"भापा, अगर नहीं लाया तो?" चलने से पहले छोटे ने कहा था। यह छोटे के अंदर का डर बोला था।

"ज़रूर लाऊँगा," साइकिल खड़ा करके उसने छोटे को चूमा था।

"सच्ची लाना। नहीं तो मैं रात में तेरे साथ नहीं सोऊँगा।"

"अच्छा। अगर ले आया तो...।"

"फिर मैं तेरे साथ रोज़ ही सोया करूँगा।"

मीतो ने कहा था, "तू रोज़ शहर जाता है। लौटते हुए घर का छोटा-मोटा सामान ही ले आया कर। यहाँ तो गुड़ दस रुपये से कम नहीं देते। जितना चाहे दूध डाले जाओ, रंग बदलता ही नहीं। चाय पीने को जी नहीं करता।"

काम पर से तो उसे दो घड़ी की फुर्सत नहीं मिलती थी। रोटी खाने के समय भी मौका लगते मालकिन उसे दो पल बैठने न देती। रोटी खाकर वह डिब्बा बाद में साइकिल की टोकरी में रखता, वह पहले ही किसी न किसी काम के लिए आवाज़ लगा देती। आगे से

उससे जवाब न दिया जाता। जवाब वह देता भी कैसे? बड़ी मुश्किल से सर्दियों में काम मिला था। गाँव में तो कोई काम रहा नहीं था। गेहूँ की गुड़ाई हो चुकी थी। कोल्हू में अभी गन्ना चढ़ा नहीं था। इस बार उसे पाँच दिन के बाद काम मिला था। वह भी मिस्त्री की वजह से। मिस्त्री उसकी ससुराल की तरफ का निकला था। इसीलिए मिस्त्री ने पचास मज़दूरों में से उसे बुला लिया था। वह चौक में मज़दूरों से हटकर बैठ जाता। देखता रहता कि कोई मालिक उसे भी आवाज़ देता है या नहीं। मज़दूर मालिकों की तरफ दौड़ते। वह नया-नया शहर में आने लगा था। यह नहीं जानता था कि मिस्त्रियों को कैसे सैट किया जाता है। दस बजे तक वह मुँह उठाकर देखता रहता। फिर गाँव की तरफ चल देता। जहाँ तक होता, वह गाँव की तरफ पैदल ही जाता। साइकिल पर चढ़ने को मन न करता। वह सोचता, अभी गाँव जाकर भी क्या करेगा। यूँ ही कोई जमींदार आवाज़ लगा देगा, "आज थोड़ी सी झूटी मेरे साथ ही लवा दे तो।" थोड़ी सी झूटी आधी दिहाड़ी जितनी होती। अगर कहीं ज्यादा दिनों का काम हो तो भइयों को लगा लेता है। जिस भी मोटर पर देखो, भइयों की टोली चलती-फिरती मिल जाएगी।

मिस्त्री को पैसे गिनते देख वह भी मालकिन की ओर चल पड़ा।

"मेरा भी हिसाब कर दो," उसने खंभे के साथ पीठ टिकाकर आहिस्ता से कहा।

"ठहर जा पुत्तर। पैसे तो तूने लेने ही हैं। पैसे पूरे मिलेंगे। तू चिंता क्यों करता है। पहले ऐसा कर, वो फट्टे उठाकर छत पर रख आ। ये अपने घर के हैं।" मालकिन ने पर्स की जिप फिर से बंद कर ली।

"अच्छा जी।" कहकर वह कमरे की ओर चल पड़ा। फट्टे उठाकर छत पर रखने लगा। उसने आसपास देखा। घरों में बत्तियाँ जल उठी थीं। आकाश में पसरी कालिमा और गहरी होती जा रही थी। उसके हाथों में फुर्ती आ गई। उसे अपनी जल्दी भी थी। निक्के के लिए बूट खरीदने थे।

"नौजवान, क्या टैम हुआ?" आँगन में खेल रहे मालकिन के लड़के से उसने पूछा।

"अंकल जी, साढ़े छह बजने वाले हैं।" लड़के ने रूखा सा जवाब दिया।

उसने फिर आकाश की ओर देखा। अंदाजा लगाने लगा, 'टैम कुछ ज्यादा लग रहा है। पहले तो साढ़े छह बजे इतना अँधेरा नहीं होता था। फिर आज क्यों?' शक दूर करने के लिए उसने लड़के से दुबारा पूछा, "नौजवान, अच्छी तरह देखकर बता।"

लड़के ने हाँफते हुए बकरे की तरह उसकी तरफ देखा। बोला, "अगर यकीन नहीं आता तो आप खड़ी देख लो।"

वह झूठा-सा पड़ गया था।

फट्टे और रस्सियाँ सँभालने के बाद वह नलके की ओर गया ही था कि मालकिन बोली, "बेटा, ये ईंटें-रोड़े भी वहाँ से उठाकर फेंक दे। ये काम तुझे ही करना पड़ेगा। तेरे बाद इसे कौन करेगा? घर का कोई प्राणी काम करके राजी ही नहीं। तू ये ईंटें उठा, मैं चाय बनाती हूँ।" कुर्सी पर से उठते ही शॉल की बुक्कल ठीक करते हुए उसने कहा।

उसने प्रत्युत्तर में कोई जवाब नहीं दिया। एक के बाद एक ईंट ज़ोर से फेंकने लगा। मन ही मन सोचने लगा कि मालकिन आज बड़ी मेहरबान हो रही थी। चाय बनाने के लिए रसोई में गई थी। वह तो सिर्फ़ एक बार चाय पिलाती थी। एक दिन मिस्त्री का सिर दर्द कर रहा था। उसने सेमे से कहा था कि वह मालकिन को कहे कि दो कप चाय बना दे। सेमे को मालकिन की आदत का पता था। उसने चाय के लिए मालकिन को नहीं कहा था। बाज़ार से चाय बनवा लाया था।

उसे मालकिन पर गुस्सा आ रहा था। दस दिनों में जितनी देर वहाँ रहा, इस बाप की बेटी ने उसे टिककर बैठने नहीं दिया। यह भी कर ले। वो भी कर दे। कोई काम पीछे रह न जाए। वह मिस्त्री से पहले आता था। बाद में जाता था।

मिस्त्री जाते समय समझाता था, "ले भई सेमे, जाते वक्त मेरे हथियार अंदर रख देना। मेरी तरफ से छुट्टी समझ ले। सारे मालिक एक जैसे होते हैं। ये लेबर को बैठने नहीं देते। बहाना बनाकर निकल जाया कर।"

जब वह साइकिल को हाथ लगाता तो वह पीछे से आवाज़ अवश्य लगाती। उसकी आवाज़ में अथाह मिठास होती थी। "सभी औरतें ऐसी ही होती हैं।" पर शहर जैसी मक्कार नहीं। दूसरे पल सोचता, गाँव में तो ऐसा नहीं होता। अगले दो वक़्त की रोटी खिलाते हैं। साथ में लस्सी, चाय और कई अच्छे बंदे तो दूध या शराब भी पिला देते है। वह भी जबरदस्ती। ऊपर से गन्ने चूसने के लिए मिल जाते हैं। छोलिया जितना मर्जी ले लो। शाम को सब्ज़ी वगैरह अलग। क्या मज़ाल कोई आगे से कुछ भी कहे। चलो, यदि कभी कुछ कह भी दिया तो क्या हो गया। पाँचों उँगलियाँ एक सी तो नहीं होतीं। पर शहर! शहर में तो एक प्याली चाय की पकड़ाकर निबटा देते हैं। जब स्वाद आने लगता है तो प्याली खत्म भी हो जाती। न आदमी और माँग सकता, न छोड़ सकता। सारा स्वाद ही मारा जाता।

एक बार फिर उसे भइयों पर गुस्सा आने लगा, पर अगले ही पल मालकिन चाय की प्याली लेकर उसके पास खड़ी हो गई, "बेटा, तेरा गाँव कौन सा है?"

"लद्धड़ां।"

"बाप का क्या नाम है? चाय भी पीता जा। साथ ही साथ एक हाथ से ईंटों के टुकड़े भी पीछे फेंकता जा।"

"चानण राम।"

"कहाँ ब्याहा है? ये लकड़ी उठाकर छत पर रख आ पहले। नहीं तो फिर तू भूल जाएगा।"

"जैतो मंडी।"

"बड़ी दूर विवाह करवाया?"

"संजोग ले गए।"

"मालवे की औरतें बड़ी अच्छी होती हैं। तेरी घरवाली कैसी है?"

"अच्छी औरत है।"

"तेरे संग लड़ती तो नहीं?"

"बिलकुल नहीं।"

"मैंने देखा है, मालवे की औरतें बातें बहुत करती हैं।"

"हाँ जी, तुम्हारी बात ठीक है।"

"खाती भी ज्यादा?"

"मैंने कभी इस बात की ओर ध्यान ही दिया।"

"बच्चे कितने हैं? जाने से पहले फावड़े से नींव के साथ साथ रेता ज़रूर लगा देना। फर्श तो अभी ठहरकर लगवाएँगे। जब लगवाएँगे, तुझे ज़रूर बुलाऊँगी।"

"दो।"

"फिर तो तू बड़ा समझदार निकला। महीने का दो हजार तो कमा ही लेता होगा। देख, इस तरफ रेता कैसे बिखरा पड़ा है।"

"नहीं जी, काम लगातार मिलता नहीं।"

"चल, दूसरों से तो अच्छा है।"

उसने मालकिन की ओर देखा। वह हँस रही थी।

"कोई खर्चा नहीं। जिनके यहाँ काम किया, चाय-पानी वो पिला देते हैं।"

"हूँ..।" ढीला सा उसने जवाब दिया। मन ही मन में कहा जैसे तुम।

"तेरी घरवाली भी किसी के काम करने जाती है?"

"हाँ जी, लंबरदारों का गोबर-कूड़ा उठाने जाती है।"

"दो वक्त या एक वक्त? यह देख तेरे पैर के पास साबुत ईंट पड़ी है।"

"सवेर के वक्त ही।"

"कितने पैसे मिल जाते हैं?"

"तीन सौ रुपया महीने का।"

"चलो, खाली बैठने से तो सौ गुणा अच्छा। ये सरिया बच गया था?"

"हाँ जी।"

मालकिन ने सरिया उठाकर अँगीठे पर रखने का इशारा किया।

"बेटा, बच्चे स्कूल जाते हैं?"

"हाँ जी, बड़ा पाँचवीं में पढ़ता है, छोटा दूसरी में।"

"बड़े का क्या नाम है?"

"शिव।"

"और छोटे का?"

"सैफ़ी।"

"फिर तो तेरी घरवाली बड़ी समझदार हुई। ये बड़ी ईंट उठाकर वहाँ रख आ।"

"ऊपर वाले की मेहर है। वह मुझसे सियानी है।"

"जिसकी किस्मत सीधी हो, उसका सबकुछ सीधा होता है। औरत सियानी हो तो घर स्वर्ग बन जाता है। ...यह खंभे को उठाकर वहाँ रख दे।"

उसने दस पंद्रह ईंटों वाले खंभे को नीचे की ओर से थोड़ा हिलाया, पर खंभा बहुत भारी था।

"तू ऐसा कर, इसे खींचकर दीवार के साथ लगा दे।"

"मुझसे तो यह हिलता ही नहीं।"

"न मेरा बेटा, अगर तुझसे नहीं हिलता तो बता और किससे हिलेगा?"

खींच-घसीट कर उसने खम्बे को दीवार के साथ टिका दिया। साइकिल की तरफ गया। यह देखने के लिए कि ट्यूब-हवा ठीक है। हाथ-मुँह धाने का समय ही नहीं बचा था। अँधेरा घना हो गया था। हल्की-हल्की हवा चलने लगी थी। एक बार तो उसके मन में आया कि जल्दी से साइकिल उठाकर दौड़ जाए। पर उसे तो पैसे भी ज़रूर लेने थे।

"बेटा, यह अब कौन रखेगा?"

"क्या?"

"ये फावड़े और तसले।"

"मुझे अपने घर भी जाना है। बहुत ज्यादा टैम हो गया। अब आप खुद ही दे आना।"

"न मेरा बेटा, पाँच मिनट में तू कौन सा लेट हो चला है। सोना ही है घर जाकर। ये किराये पर लाए हुए हैं। अगर आज न दिए तो एक दिन का किराया और पड़ जाएगा। उन्होंने तो पहले ही तागीद की थी, जैसे साफ-सुथरे लेकर चले हो, वैसे ही वापस लेने हैं। ये साथ ही घर में दुकान है।"

"माता जी बाहर अँधेरा..." शब्द गले में ही कहीं अटक गए थे।

पाँच चक्कर में वह सारा सामान दे आया।

"अब मैं जाऊँ...?" अपने गुस्से पर काबू रखते हुए उसने पूछा।

मलकिन ने चमड़े का पर्स खोला और दस-दस के पचास नोट उसकी ओर बढ़ा दिए। उसने नोट गिने। फ्तूही की अंदरवाली जेब में डाल लिए। सारी थकावट एक मिनट में भूल गया।

"बेटा, बस एक काम तो रह ही चला था। जाते-जाते कमरे की खिड़कियाँ बंद कर दे।"

खिड़कियाँ बंद करके जब वह साइकिल पर चढ़ा तो आगे बाज़ार बंद था। शहर से बाहर अँधेरा ही अँधेरा था। सिर्फ़ उसके साइकिल की सूखी हुई चेन चीं-चीं कर रही थी।